

भारत में मानवाधिकारों की अवधारणा

मेजर राज कमल दीक्षित,
प्राचार्य, सेंट फूल चन्द बागला कालेज, हाथरस।

सारांश

मानव अधिकारों का अर्थ है मानव गरिमा को अक्षुण्ण रखते हुए मानव व्यक्तित्व का अधिकतम विकास। व्यक्तित्व एक मात्र वह आधार होता है, जो मनुष्य को अन्य प्राणियों से पृथक स्वरूप प्रदान करता है अन्यथा मानव व अन्य प्राणियों में आकार मात्रा के अतिरिक्त कोई अन्य भेद नहीं होता। व्यक्तित्व निर्माण का बहुत बड़ा आधार उन परिस्थितियों से निर्मित होता है, जो मानव को कुछ ऐसी आवश्यक दशाओं को सुलभ कराती है, जिनके अभाव में मानव व्यक्तित्व अपने अभीष्ट स्वरूप से वंचित रह जाता। उन परिस्थितियों में स्वतंत्रता व समानता का नाम सर्वोपरि है। स्वतंत्रता व समानता वे दो आधार बिन्दु हैं जिन पर विश्व के प्रत्येक अधिकार-पत्र की नींव का निर्माण हुआ है, क्योंकि स्वतंत्रता व समानता वे आवश्यक परिस्थितियाँ हैं, जिनके स्वस्थ सानिध्य में ही मानव व्यक्तित्व पुष्पित व पल्लवित हो सकता है। मानव अधिकारों का आग्रह है कि मानव के व्यक्तित्व के विकास हेतु आवश्यक समस्त परिस्थितियों का अधिकतम सृजन होना चाहिए। मानव अधिकारों का दूसरा सशक्त आग्रह है कि मानव गरिमा का किसी भी मूल्य पर क्षरण नहीं होना चाहिए। प्रस्तुत अध्याय में अतीत से लेकर वर्तमान तक भारत में मानवाधिकारों की अवधारणा पर चर्चा की गई।

प्रस्तावना

व्यक्तित्व एक मात्र वह आधार होता है, जो मनुष्य को अन्य प्राणियों से पृथक स्वरूप प्रदान करता है अन्यथा मानव व अन्य प्राणियों में आकार मात्रा के अतिरिक्त कोई अन्य भेद नहीं होता। व्यक्तित्व निर्माण का बहुत बड़ा आधार उन परिस्थितियों से निर्मित होता है, जो मानव को कुछ ऐसी आवश्यक दशाओं को सुलभ कराती है, जिनके अभाव में मानव व्यक्तित्व अपने अभीष्ट स्वरूप से वंचित रह जाता। उन परिस्थितियों में स्वतंत्रता व समानता का नाम सर्वोपरि है। स्वतंत्रता व समानता वे दो आधार बिन्दु हैं जिन पर विश्व के प्रत्येक अधिकार-पत्र की नींव का निर्माण हुआ है, क्योंकि स्वतंत्रता व समानता वे आवश्यक परिस्थितियाँ हैं, जिनके स्वस्थ सानिध्य में ही मानव व्यक्तित्व पुष्पित व पल्लवित हो सकता है। मानव अधिकारों का आग्रह है कि मानव के व्यक्तित्व के विकास हेतु आवश्यक समस्त परिस्थितियों का अधिकतम सृजन होना चाहिए। मानव अधिकारों का दूसरा सशक्त आग्रह है कि मानव गरिमा का किसी भी मूल्य पर क्षरण नहीं होना चाहिए। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि मानव अधिकारों का अर्थ है मानव गरिमा को अक्षुण्ण रखते हुए मानव व्यक्तित्व का अधिकतम विकास। मानव व्यक्तित्व का पल्लवन जिस स्वस्थ सानिध्य की अवधारणा पर आधारित है वह स्वयमेव मानव अधिकारों की माँग करता है।

भारत के राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के पूर्व अध्यक्ष **न्यायमूर्ति वेंकटचेलैया** के अनुसार “मानव अधिकार नैसर्गिक अधिकार है तथा जिनके अभाव में हम मानव प्राणी के रूप जीवित नहीं रह सकते हैं।” “फ्रेंच दार्शनिक रुसों ने शोषण तथा असमानता के बंधनों में जकड़े हुए जनसाधारण की स्वतंत्र होने की और स्वाधीनता तथा समानता का बेहतर जीवन प्राप्त करने की आकांक्षा को व्यक्त किया था। वास्तव में, अनेक सामाजिक विचारक तथा राजनीतिक आन्दोलन बहुत समय से मनुष्य को उन जंजीरो से मुक्त कराने का, जिनमें वह जकड़ा रहा है, उन्हें उन अधिकारों का उपभोग करते हुए देखने का प्रयत्न करते रहे हैं जिन्हें रुसो स्वभाविक, अभिन्न तथा अविभाज्य समझते थे।” रुसो से पहले भी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में ही सही युरोपीय विद्ववानों ने येन-केन प्रकारेण मानवाधिकार की अवधारणा का प्रतिपादन किया। जर्मनी में मार्टिन लुथर का प्रयास उल्लेखनीय है, 1215 का मैग्नाकार्ट, 1688 की गौरवपूर्ण क्रांति तथा इंग्लैंड में चार्टिस्ट आन्दोलन आदि ने मानवाधिकारों को सरल तथा सुलभ बनाने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि, मानवाधिकारों की प्राप्ति अकस्मात् अथवा बिल्कुल सरलता से बहुत कम समय में नहीं हुई है, अपितु इसकी व्यवहारिकता में लगभग हजारों वर्षों का लम्बा इतिहास रहा है, तब जाकर हम आज मानवाधिकारों का उपभोग कर सकते हैं।

1) प्राचीन भारत एवं मानवाधिकार

प्राचीन भारत में मानव अधिकारों की दशा बहुत अच्छी तो नहीं लेकिन फिर भी संतोषप्रद अवश्य कही जा सकती है। पूर्व वैदिक (ऋग्वैदिक) काल में यह सामाजिक मान्यता थी कि, “सहकारिता के द्वारा ही सभी को सम्मान प्रदान किया जा सकता है तथा सभी का सहयोग प्राप्त किया जा सकता है।” वैदिक साहित्य (संस्कृत में रचित) के अध्ययन एवं विश्लेषण से यह पता चलता है कि, स्त्री एवं पुरुष में कहीं भी तथा किसी भी प्रकार का भेद नहीं था। परिवार में स्त्री को पुरुष की भाँति सम्मान प्राप्त था। परिवार में जो महत्व पुरुष (पिता, पति, भाई तथा पुत्र) का था वही स्त्री (माता, पत्नी, भगिनि तथा पुत्री) का भी था।

परिवार के प्रत्येक महत्वपूर्ण निर्णय में पुरुष की भाँति स्त्री भी समान भागीदार थी, जहाँ एक ओर पुरुष को गृह स्वामी तो वही दूसरी ओर स्त्री को गृह स्वामिनी होने का गौरव प्राप्त था, गृह की अर्थव्यवस्था के सफल तथा सुचारु

संचालन में उसका पुरुष को पूर्ण सहयोग प्राप्त होता था, स्त्री के महत्वपूर्ण सुझाओं की सामान्यतः उपेक्षा नहीं होती थी। विद्या अध्ययन के क्षेत्र में भी उसकी प्रतिभा एवं विद्वता से परिवार से लेकर समाज तक लाभान्वित होता था।" अपाला, घोषा, गार्गी तथा मैत्री आदि विदुषी इसके प्रत्यक्ष प्रमाण थे।"

"स्त्री को अन्नपूर्णा, लक्ष्मी, सरस्वती तथा दुर्गा आदि देवी रूपी में जननी तथा शक्ति स्वरूपा स्वीकार किया गया। विशुद्ध मनुस्मृति में वर्णन मिलता है कि जहाँ नारी की पूजा होती है अर्थात् सम्मान प्राप्त होता है, वहाँ देवताओं का वास होता है।" परिवार तथा समाज में सामान्यतः पारस्परिक झगड़े कम ही हुआ करते थे, लोग शांति पूर्ण तरीके से विवादों का निपटारा करना अधिक पसंद करते थे।

"वर्ण व्यवस्था का आधार त्वचा का रंग नहीं अपितु योग्यता, कर्म अथवा गुण था।" व्यक्ति अपनी पसन्द का व्यवसाय चुनने में स्वतंत्र था। दुर्गुणों के कारण ब्राह्मण का पुत्र शुद्र की श्रेणी में तथा सद्गुणों के कारण शुद्र का पुत्र, ब्राह्मणों की श्रेणी में स्वीकार किया जाता था।" स्व के स्थान पर परहित का भाव पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन के केन्द्र में था। यथा— "तमसो माँ ज्योतीर्गमय (अंधकार से प्रकाश की ओर) आदर्श के द्वारा सम्पूर्ण मानव जाति के कल्याण की मंगल कामना की गई।"

रामायण, महाभारत, स्मृतियों तथा पुराणों आदि आध्यात्मिक एवं पौराणिक ग्रंथों में स्थान-स्थान पर येन-केन-प्रकारेण ही सही मानवाधिकारों की अवधारणा की झलक मिलती है। रामायण तथा महाभारत में ऐसे अनेक प्रसंग मिलते हैं जब "राजा प्रजा के कल्याण हेतु उत्तरदायी था तथा इसके उपलक्ष्य में प्रजा की ओर से राजा को भरपुर सम्मान प्राप्त होता था।" यद्यपि प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक भारत में राजतंत्रिक शासन प्रणाली प्रचलित थी तथापि राजा स्वैच्छाचारी अथवा निरंकुश नहीं हो सकता था, उस पर धर्म, मंत्री परिषद तथा प्रजा का पूर्ण नियंत्रण था।"

वैशाली वज्जी तथा मल्ल आदि राज्यों में गणतंत्रात्मक प्रणाली प्रचलित थी, हालाँकि उपरोक्त प्रणाली में राज्य प्रधान का चुनाव साधारण जन नहीं अपितु समाज के सम्पन्न प्रतिष्ठीत तथा बुद्धिजीवि व्यक्ति ही करते थे। मौर्य गुप्त, चोल, पल्लव, सातवाहन, राजपूत, मराठा तथा सिक्ख आदि-आदि राजवंशों के राजाओं ने मानव मात्र के सुख वैभव कल्याण अर्थात् सम्मान हेतु अविस्मरणीय कार्य किये।

भारतीय मनीषियों ने तो मानव तो मानव इससे भी कहीं आगे बढ़कर पशु, पक्षियों अर्थात् जीव मात्र के कल्याण हेतु चिंतन किया किन्तु उत्तर वैदिक काल के प्रारम्भ होते-होते उपरोक्त सकारात्मक मान्यता ने नकारात्मकता का रूप धारण करना प्रारंभ कर दिया तथा उत्तर वैदिक काल की समाप्ति तक यह पूर्ण रूपेण जड़ तथा संकीर्ण हो गई। उत्पन्न हुए विकारों अर्थात् दोषों के निवारण हेतु गौतम बुद्ध तथा महावीर स्वामी आदि महात्माओं (दार्शनिक एवं सुधारक) के नेतृत्व में बौद्ध एवं जैन जैसे सम्प्रदायों की उत्पत्ति हुई जिनका उद्देश्य "समाज एवं धर्म सुधार के द्वारा मानव मात्र का उत्थान एवं कल्याण था।"

बौद्ध धर्म के प्रसार का कारण उसका सामाजिक पक्ष भी था। वैदिक समाज वर्ण-व्यवस्था के आधार पर विभाजित था और उसमें ऊँच-नीच की भावना थी। समस्त धार्मिक तथा सामाजिक श्रेष्ठता ब्राह्मण वर्ग में सीमित होकर रह गई थी। समस्त ज्ञान विद्या पर उनका एकाधिकार हो रहा था। शुद्रों और वैश्यों की दशा सबसे खराब थी।

वैदिक समाज में प्रचलित यज्ञ-अनुष्ठान, वर्ण एवं जाति-भेद, पशु वध, ब्राह्मणों की सर्वोच्चता, ऐसी विशेषतायें थी जो तत्कालीन समाज के विकास में बाधक सिद्ध हो रही थी। अतः समाज इन विशेषताओं को अमान्य करने लगा था। सम्पूर्ण जन सामान्य अपने को इन जड़ मान्यताओं से मुक्त करने के लिए कसमसा रहा था।

बुद्ध ने मनुष्य की समानता स्थापित की और उन्होंने घोषित किया कि सदाचरण द्वारा कोई भी मनुष्य निर्वाण प्राप्त कर सकता था। पुरोहितवाद न होने से बौद्धधर्म में जनतान्त्रिक वातावरण का निर्माण आरम्भ से ही हुआ। बौद्ध धर्म में स्त्रियों को भी मोक्ष का अधिकारी माना गया है। वर्ण-व्यवस्था का विरोध तथा सामाजिक समानता की स्थापना वस्तुतः सामाजिक क्रान्ति थी। अतः सभी वर्गों का सहयोग बुद्ध को प्राप्त हुआ और यह बौद्ध धर्म की लोकप्रियता का दृढ़ आधार बन गया।

2) मध्यकालीन भारत एवं मानवाधिकार

निःसंदेह प्राचीन भारत में सामाजिक एवं मानसिक व्याधियों को समाप्त करने हेतु बौद्ध और जैन मत रूपी औषधियों का उपयोग अनिवार्य हो गया था, कालान्तर में अनेकानेक संतो एवं सुधारकों ने मध्य कालीन समाज की दुर्दशा के उपचार हेतु कुछ विशेष रसायनों का पान कराया। जिस प्रकार प्राचीन भारतीय समाज जड़ता की जंजीरों में जकड़ा हुआ था तथा गौतम बुद्ध और महावीर स्वामी ने जड़ता की इन बेड़ियों को तोड़ा, उसी प्रकार मध्य कालीन समाज भी प्राचीन कालीन समाज की अपेक्षा कहीं अधिक कठोर बंधनों में जकड़ा हुआ था अतः उपरोक्त समस्या के समाधान हेतु अनेकानेक चिकित्सकों एवं सुधारकों की कहीं अधिक आवश्यकता हुई।

प्रमुख सन्तों (चिकित्सक एवं सुधारक) में रामानुजाचार्य, रामानन्द, कबीर दास, गुरुनानक, संत रैदास तथा दादुदयाल के नाम सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं अविस्मरणीय हैं। रामानुजाचार्य महान दार्शनिक के साथ-साथ महान् समाज-सुधारक भी थे। वे भारतीय जाति व्यवस्था तथा समाज में ब्राह्मणों के प्रभुत्व एवं शूद्रों की पीड़ित अवस्था से अवगत थे। धर्म परिवर्तन में शूद्रों की रक्षा करना उन्होंने समाज-सुधार का लक्ष्य बनाया।

विल्लई तथा अरंगविलिदास आदि शूद्रों को अपनाशिष्य बनाकर उन्होंने भावी समाज-सुधारकों का पथ प्रदर्शन किया। सर्वप्रथम रामानुजाचार्य ने ही समाज-सुधार आन्दोलन का बीज बोया जो आगे चलकर कबीर, नानक, रैदास, जोती बा, फूले, बाबा साहब अम्बेडकर तथा गांधी जी के हाथों में पल्लवित तथा फलित हुआ।

कबीर ऐसे समाज में हुए जब विषमताएं नैराश्य, विश्वासघात तथा नृशंसता अपना ढोल पीट-पीटकर हिन्दुओं के दुर्बल मन को भयभीत कर रहे थे। समाज में कुत्सित विचारों तथा बाह्य आडम्बरों का बाहुल्य था। धर्म के ठेकेदार मठाधीश बनकर अनाचार का जीवन व्यतीत कर रहे थे।

सामाजिक विषमताओं से तंग आकर निम्न जाति के लोग धर्म परिवर्तन पर उतारू हो गये थे। आर्थिक संकट से सामान्य जनता की रीढ़ ही टूट गयी थी। भावुक कबीर से समाज की यह दशा देखी न गयी। बाह्य आडम्बर असत्य, अनाचार, व्यभिचार तथा वर्ण भेद के प्रति उनकी प्रतिक्रिया एक क्रान्ति के समान थी। वे अहिंसक क्रांति की भावना द्वारा राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक सभी क्षेत्रों में क्रान्ति पैदा करना चाहते थे।

संतो के उपदेशों का प्रभाव मुसलमान शासकों पर भी पड़ा। इन्होंने विभिन्न धर्मों के बीच एकता स्थापित की इससे मुस्लिम अत्याचार कम हुए। हिन्दु तथा मुसलमान दोनों में उदारता की वृत्ति का जन्म हुआ। वे भेदभाव को छोड़कर सहिष्णुता को अपनाने लगे।

संतो ने ऊंच-नीच, छूत-अछूत का भेदभाव दूर करने का प्रयास किया था। सभी सन्तों ने संकीर्ण वृत्ति की निन्दा की। सन्तों की प्रेममयी वाणी से सौम्यता, सौजन्यता तथा सद्भावना का जन्म हुआ। सामाजिक द्वेष, कलह वृत्ति कम हो गयी।

3) आधुनिक भारत में मानवाधिकार

सामाजिक, धार्मिक सुधार आन्दोलन के कारण सरकार ने कानून बनाकर सती प्रथा को गैर कानूनी घोषित कर दिया। धीरे-धीरे यह प्रथा भारत से समाप्त होने लगी। केशवचन्द्र सेन के प्रयासों से "नेटिव मेरिज एक्ट" पास हुआ, जिसके अनुसार बहु विवाह को दण्डनीय अपराध घोषित कर दिया गया और विधवा विवाह एवं अन्तर्जातीय विवाह को प्रोत्साहित किया गया।

समाज में प्रचलित छुआछूत, पर्दा प्रथा और सती प्रथा आदि बुराइयों पर कठोर आघात किया गया जबकि स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहन दिया गया तथा उनको पुरुषों के समान अधिकार दिलवाने के लिये प्रयास किये गये। इसी समय गरीबों की सहायता एवं सेवा के लिये चिकित्सालयों अनाथालयों और आश्रमों आदि अनेक संस्थाओं की स्थापना की गई और स्वयं सेवक दलों का गठन भी किया गया। सरकार ने इन सभी कुप्रथाओं को समाप्त करने के लिये महत्वपूर्ण कदम उठाये।

शिक्षा एवं साहित्य के क्षेत्र में भी इन सुधार आन्दोलन के कारण व्यापक क्रांति उत्पन्न हुई। परिणामस्वरूप स्त्री शिक्षा के लिये अनेक कालेज एवं स्कूलों की स्थापना की गई। धर्म सुधारकों के प्रयासों से डी.ए.वी. कॉलेज, मुस्लिम कॉलेज, हिन्दू कॉलेज तथा सनातन धर्म कॉलेज आदि शिक्षण संस्थाएँ स्थापित हुईं।

ये आन्दोलन जन साधारण में राष्ट्रीय चेतना जाग्रत करने में सहायक हुए। इसलिये वैलन्टाइन शिरोल ने भारत के सामाजिक धार्मिक आन्दोलन में राष्ट्रीयता की उत्पत्ति को देखा। स्वामी दयानन्द सरस्वती सबसे पहले 'स्वराज्य' शब्द का प्रयोग किया तथा विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करना एवं स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग करना सिखाया। वह प्रथम व्यक्ति थे, जिन्होंने हिन्दी को राष्ट्र भाषा के रूप में स्वीकार किया।

स्वामी दयानन्द ने अपनी पुस्तक सत्यार्थ प्रकाश में विदेशी शासन की निन्दा की। उन्होंने कहा कि अच्छा से अच्छा विदेशी राज्य स्वदेशी राज्य का मुकाबला नहीं कर सकता। उन्होंने भारत की आजादी के लिये आवाज उठाई। इससे भारतीयों में उग्र राष्ट्रवाद का विकास हुआ। स्वामी विवेकानन्द ने भी भारतीय जनता को विदेशी गुलामी से आजाद होने के लिये प्रेरित किया।

मानव मात्र (स्त्री, शुद्र, आदिवासी, कृषक, श्रमिक आदि) को अधिकारों की प्राप्ति की दिशा में महात्मा ज्योतिबा फूले, बाबा साहब अम्बेडकर तथा गाँधी जी का योगदान सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं अविस्मरणीय है। उपरोक्त चिंतकों और सुधारकों ने इस पुनीत कार्य हेतु अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया। महात्मा जोतीबा फूले कहा करते थे "जिस दिन व्यक्ति को गुलाम बनाया जाता है, उसी क्षण उसके समस्त सद्गुण नष्ट हो जाते हैं।" अर्थात् उन्हें प्रत्येक प्रकार की गुलामी से घृणा थी।

बाबा साहब अम्बेडकर ने भगवान बुद्ध, संत कबीर दास तथा महात्मा ज्योतिबा फूले को आदर्श (गुरु स्वरूप) स्वीकार कर उनकी इस कार्य संस्कृति को निरंतरता एवं सार्थकता प्रदान की। बाबा साहब के प्रयासों से भारतीय संविधान को मानवाधिकारों की दिशा में आधारशीला माना जाता है। गाँधी जी ने शुद्रों को अत्यंत सम्मान जनक "हरिजन" सम्बोधन प्रदान किया, उन्होंने 1916 से लेकर 1942 तक अपने सभी आन्दोलनों में लगभग सभी वर्गों, सम्प्रदायों, भाषाओं तथा क्षेत्रों आदि के लोगों को ससम्मान भागीदार बनाया।

गाँधी के हृदय में मानव मात्र के प्रति प्रेम, सहयोग एवं सम्मान था, अतः उन्होंने निर्धन को भी "दरिद्र नारायण" का सम्मान जनक संबोधन प्रदान किया। बाबा साहब अम्बेडकर वंचितों की शिक्षा, पुर्नवास तथा व्यवसाय के प्रबंधन की दिशा में मानवाधिकारों की प्राप्ति को सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं अपरिहार्य मानते थे। उन्होंने पत्रों, भाषणों, लेखों, साहित्य तथा संगठनों द्वारा मानव अधिकारों की क्रांति की ज्वाला प्रज्वलित की।

महात्मा ज्योतिबा फूले का ग्रंथ "गुलामी (गुलाम गीरि)" भारत में मानवाधिकारों का घोषणा पत्र" (महत्वपूर्ण दस्तावेज) स्वीकार किया जाता है। उन्होंने ब्रिटिश सरकार से पूछा था कि, "जिस हिसाब से सरकार किसानों से कर वसूलती है, तो क्या वह उसी हिसाब से किसानों के कल्याण हेतु उस पैसे को खर्च करती है?" उनके प्रयासों से ही भारत में श्रमिक आंदोलन महिला एवं दलित शिक्षा इत्यादि क्रांतिकारी तथा युगान्तरकारी कार्यों की आधारशीला रखी गई।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि सभी युगों में भारत में चिंतकों एवं सुधारकों को मानवाधिकारों हेतु भागीरथ प्रयास करने पड़े।

निष्कर्ष

निःसंदेह स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में निरंतर एवं उत्तरोत्तर जनसामान्य को मानवाधिकारों की सुगमता पूर्ण उपलब्धता की दिशा में न्याय-पालिका, विधायिका, कार्यपालिका तथा अनेकानेक संस्थाओं एवं संगठनों द्वारा स्थानीय स्तर तक सकारात्मक प्रयास किये गये हैं, किन्तु यहाँ यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि, क्या वास्तव में धरातलीय वास्तविका वहीं है जो हमें सामान्यतः दृष्टिगोचर होती है। उत्तर बहुत अधिक उत्साहित करने वाला नहीं है, क्योंकि भले ही हमने नियमों, अधिनियमों प्रावधानों आदि-आदि के द्वारा मानवाधिकारों की जनसामान्य को उपलब्धता अवश्य ही सुनिश्चित कर दी हो, किन्तु हम अभी भी समाज की नकारात्मक अथवा संकीर्ण मानसिकता में सकारात्मक बदलाव नहीं ला सकें हैं। अभी भी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में वहीं सम्प्रदायिकता, क्षेत्रियता, भाषायिता, जातियता, लैंगिक विषमता आदि संकीर्णताएँ हमारे हृदय और मस्तिष्क से बाहर नहीं निकल सकी हैं।

21वीं सदी के भारत में भीमा कोरेगाँव, सहारनपुर, उना, मुजफ्फरपुर, सेल्टर होम, कटुवा, उन्नाव, निर्भया तथा दिल्ली हिंसा, इसके अतिरिक्त दक्षिण छ.ग. में बच्चों का अपहरण एवं तस्करी आदि अनेकानेक घटनाएँ आइने की तरह हमें हमारा असली चेहरा दिखा रही हैं। अतः यदि सचमुच हमें भारत को मानवाधिकारों का वास्तविक नेतृत्व करता बनाना है तो इसकी शुरुआत हमें सर्वप्रथम परिवार से करनी होगी। परिवार से ग्राम, ग्राम से नगर, नगर से प्रदेश, प्रदेश से राष्ट्र तथा राष्ट्र से विश्व तक।

हमें स्त्री (माता, पत्नि, भगिनि तथा पुत्री), दलित तथा आदिवासी, अल्पसंख्यक (अन्य सम्प्रदाय के लोग), विकलांग (दिव्यांग), बालक-बालिकाएँ, वृद्ध, किन्नर, (जिपतक ळमदकमत) वंचितों तथा असहायों आदि का वास्तविक शुभचिंतक बनकर उनके समग्र विकास तथा इसके साथ-साथ मानवता के चरमोत्कर्ष में निःस्वार्थ भाव से प्रत्येक प्रकार की संकीर्णता से रहित होकर तन-मन-धन से यथोचित एवं यथा संभव सहयोग एवं समर्थन करना होगा, मार्गदर्शक की भूमिका निभानी होगी। तभी हमारा भारत सशक्त और सृष्टि भारत बनेगा।

संदर्भ ग्रंथ

- 1) राजनीति विज्ञान के मूलभूत सिद्धांत – डॉ. इकबाल नारायण.
- 2) अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति – डॉ. एस.सी. सिंहल.
- 3) भारतीय राजनीतिक चिंतन – डॉ. पुखराज जैन.
- 4) मानव अधिकार – पुनीत कुमार.
- 5) भारतीय शासन एवं राजनीति – डॉ. पुखराज जैन एवं डॉ. बी.एल. फाड़िया.
- 6) प्रतियोगिता दर्पण हिन्दी मासिक – अप्रैल 2020.
- 7) प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति – डॉ. के.सी. श्रीवास्तव.
- 8) भारतीय राजव्यवस्था – परीक्षा मंथन प्रकाशन.
- 9) भारतीय संविधान – डॉ. सुभाष कश्यप.
- 10) आधुनिक भारत का इतिहास – यशपाल एवं ग़ोवर.
- 11) श्रेष्ठ हिन्दी निबंध – अरिहन्त प्रकाशन.
- 12) मध्यकालीन भारत का इतिहास – डॉ. दीनानाथ वर्मा.